प्राचीन भारत में शैक्षणिक धारणाओं एवं संस्थाओं की वर्तमान में प्रासंगिता

डॉ0 ज़्याऊल हसन खाँ,

एसोसिएट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग (बी.एड्.)
शिब्ली नेशनल पी0जी0 कालेज, आजमगढ़

भारत में शिक्षा पद्धति का इतिहास वैदिक युग से वर्तमान युग तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होता रहा है। यद्यपि प्राचीन युग की शिक्षा पद्धति एवं वर्तमान युग की शिक्षा पद्धति में अनेकशः मूलभूत अन्तर उत्पन्न हो चुका है। किन्तु प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति आज भी प्रासंगिक है। उल्लेखनीय है कि वैदिक काल में श्रुति–परम्परा से वैदिक संहिताओं को हजारों वर्षों तक कण्ठस्थ रखा गया था। उन्हें लिपिबद्ध बहुत बाद में किया गया। यहाँ प्रश्न उठता है कि कौन सी शिक्षण–पद्धति थी, जिससे आचार्य एवं उनके शिष्य सम्पूर्ण संहिताओं को कण्ठस्थ कर लेते थे ? आज हम 21वीं सदी में हैं, चारों तरफ से वैज्ञानिक अविष्कारों से धिरे हैं, जो हमारे भौतिक प्रगति को प्रतिबिम्बत करता है। शिक्षण के क्षेत्र में कम्प्यूटर, टेप रिकार्ड, प्राजेक्टर के साथ–साथ मोबाईल का प्रयोग गोपनीय रूप से नकल करने के लिए भी कर लेते हैं, फिर भी प्राचीन भारतीय छात्रों की भाँति हमारी स्मरण शक्ति नहीं है। हम जितने ही भौतिक संसाधनों से सम्पन्न, नवीन वैज्ञानिक अविष्कारों से सुसज्जित होते जा रहे हैं हमारी स्मरण शक्ति उतना ही कमजोर होती जा रही है। अब कोई याद करना नहीं चाहता। सब कुछ कम्प्यूटर के भरोसे छोड़ते जा रहे हैं, जो अत्यन्त ही घातक है। ऐसे में हमारे छात्रों की प्राचीन भारतीयों के समान स्मरण शक्ति हो इसके लिये प्राचीन शिक्षा पद्धति का अनुशीलन आवश्यक है, जिसमें से अधिकांश प्रासंगिक है तो कुछ समय के साथ–साथ आप्रासंगिक भी हो चुके हैं।

प्राचीन भारतीय परम्परा में शिक्षा का संस्थागत और धारणागत स्वरूप बहुत कुछ वैसा ही नहीं था, जैसा कि आज प्रचलित है। प्राचीन भारतीय परम्परा में शिक्षा का आधार मनोयोग था, आमतौर पर इसे अध्यात्मिक रूप में चिन्हित किया जाता है। व्यक्तिक अंतर्मन को विकसित करना और सँवारना इसका मुख्य उद्देश्य था। संस्कार भी एक ऐसी ही संस्था है। इस संस्था का मूल उद्देश्य था, मनुष्य जीवन को निष्कलुष बनाते हुए आगे

बढ़े और वह मोक्ष प्राप्त कर सके। मोक्ष अध्यात्मिक नहीं था, बल्कि मनुष्य के सम्यक कर्मों के कुल जोड़ के रूप में चिन्हित किया गया है। पुरूषार्थ की अवधारणा इससे संबद्ध है– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष– कुल जोड़ पुरूषार्थ। व्यक्ति का परिशोधन इस माध्यम से होता था।

संस्कार को परिभाषित करते हुए डॉ. राजबलि पाण्डेय ने कहा है कि इसका अभिप्राय शुद्ध धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति की दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों से है, जिससे वह समाज का पूर्ण व्यवस्थित सदस्य हो सके। मूलतः यह संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ परिशोधन या शुद्ध करना (सम+आकार) होता है। संस्कार का महत्त्व वैदिक काल से ही है। ऋग्वेद में विवाह, गर्भाधान, अंत्येष्टि आदि का उल्लेख है। यजुर्वेद में मुंडन संस्कार की चर्चा है, जबकि अथर्ववेद में मुंडन, उपनयन, गोदान आदि का उल्लेख है। उन चर्चाओं से स्पष्ट होता है कि वैदिक काल के अंतिम चरण में संस्कारों की सामाजिक मान्यता स्वीकृत हो चुकी थी। इसका क्रमिक विकास, धर्मशास्त्रों, महाकाव्य, पुराणों आदि में देखने को मिलता है। गृह्य सूत्र के समय तक ये पूर्णरूपेण व्यवस्थित हो चुके थे और इसकी व्यापक जानकारी वहाँ मिलती है। धर्म के प्रति निष्ठा जागृत करना भी संस्कार का एक उद्देश्य था। यह मूलतः समाजीकरण की एक प्रक्रिया है।

गौतम के अनुसार संस्कारों का उद्देश्य है मनुष्य को अपने जीवन में आठ आत्मगुणों का अनुष्ठान करना। वशिष्ठ के इसके आगे यह भी कहा है कि संस्कारों से सुसंस्कृत एवं आठ आत्मगुणों से युक्त व्यक्ति ब्रहह्मलोक को प्राप्त कर लेता है जहाँ से वह फिर कभी मृत्युलोक में च्यूत नहीं होता (डॉ. राजबलि पाण्डेय, पृ. 17)। प्रमुख संस्कारों की गिनती अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग की है, कोई बारह, कोई सोलह, कोई अठारह और कोई चौसठ तक स्वीकार करता है। आमतौर पर सोलह संस्कार स्वीकार किए जाते हैं– गर्भाधान, पुसवन, सीमंतोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चुड़ाकर्म, कर्णवध, विद्यारंध, उपनयन, वेदारम्भ, केशांत, समावर्त्तन, विवाह और अंत्येष्टि।

प्राचीन भारत में शिक्षा की गरिमा का व्यापक बोध प्रतीत होता है। रत्न सदोह में ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र बताया गया है। महाभारत में विद्या का स्थान किसी भी चीज से बहुत ऊँचा बताया गया है। विद्या की तुलना प्राचीन भारतीय साहित्य में माता, पिता और स्त्री से की गई है। इन्हीं के समान यह कल्याणकारिणी है। यही नही, इसकी

महत्ता यहाँ तक बताई गई है कि इसी के द्वारा मनुष्य में मानवता का जागरण होता है। विद्या की महत्ता बताते हुए यहाँ तक कहा गया है कि इसी से इहलोक और परलोक दोनों ही सुधरता है। विद्या को मनुष्य में बल का स्रोत माना गया है।

डॉ. अनंत सदाशिव अल्टेकर ने शिक्षा का प्राचीन काल में दो व्यापक एवं संकुचित अर्थ स्वीकार किया है। व्यापक अर्थ से तात्पर्य है शिक्षा से आत्म–शोधन एवं आत्मविश्वास में वृद्धि संभव है तथा संकुचित अर्थ से अभिप्राय है शिक्षण अवधि में विद्यार्थी के प्रशिक्षण एवं निर्देश से है। दोनों मिलाकर ही व्यक्ति का सम्यक विकास संभव है। डॉ. अल्टेकर ने इस प्रवृत्ति की तुलना लॉक के विचार से की है, जो इस मत का पोषक है कि केवल बौद्धिक विकास इतने महत्त्व का नहीं है जितना चारित्रिक विकास। महाभारत में कहा गया है कि वही शिक्षित है जो धार्मिक है।

वैदिक और उत्तर वैदिक काल में विषयों की संख्या बड़ी ही कम थी। वैदिक काल में प्रमुख रूप से वेद का अध्ययन होता था। परन्तु इसके साथ ही व्याकरण, ज्योतिष, खगोल आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। वैदिक ऋचाओं को कंठस्थ कराया जाता था, उसकी व्याख्या बतायी जाती थी तथा उनके गुणों का विश्लेषण किया जाता था। उत्तर वैदिक काल में चारों वेद, ज्यामिति, ज्योतिष व्याकरण, शब्दशास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती थी। उपनिषद काल में वेद, वेदांतों का स्वरूप पूर्ण विकसित हो चुका था। ज्योतिष व्याकरण, छंद आदि का प्रणयन भी शास्त्र के समान ही प्रचलित था। इसके अतिरिक्त दर्शन, चिकित्सा, व्याकरण, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, शब्दशास्त्र, महाकाव्य कला आदि की भी शिक्षा दी जाती थी।

स्मृति, निबंध और पुराणों के काल में शिक्षा का आयाम और व्यापक हुआ। ऋचाओं के साथ उनकी व्याख्या पर जोर दिया गया। दर्शन की प्रगति इस समय विशेष रूप से हुई। व्याकरण के अध्ययन पर बल दिया जाने लगा। व्याकरण जानने वालों को श्रद्धा से देखा जाने लगा। भविष्यवाणी में भी लोगों को विश्वास बढ़ने लगा। साथ–ही–साथ खगोल, ज्योतिष आदि का भी अध्ययन आरंभ हुआ। गुप्तकाल में संस्कृत का प्रसार अधिक हुआ और कह सकते हैं कि संस्कृत को राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ। विभिन्न विधा यथा तर्क, दर्शन, काव्य, ज्योतिष एवं गणित के लिए भी संस्कृत का ही माध्यम बनाया गया। पुराणों का संकलन इसी समय हुआ।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का गुरूकुल एक महत्वपूर्ण अंग था। उपनयन के बाद ब्रह्मचारी गुरू के आश्रम में जाकर रहता था। इसके लिए अन्तर्वासिन शब्द का

उल्लेख किया गया है। उल्लेख किया गया है। आत्मसंयम का पाठ विद्यार्थियों को पढ़या जाता था। गुरूकुल के बारे में सामान्य धारणा यह है कि ये जंगलों में स्थित होते थे।

वाल्मीकि, विश्वामित्र, संदीपन आदि ऋषि सामान्यतया बस्ती से बहुत दूर अपना आश्रम बनाकर ज्ञान की साधना करते थे। शायद इसी से इस धारणा को बल मिला कि गुरूकुल जंगलों में होते थे। यद्यपि गुरूकुल में गुरू का परिवार भी रहता था। गुरूकुल में रहने वाले शिष्य आरंभ से ही स्वावलंबी बनने को प्रेरित होते थे। गुरूकुल शिक्षा की यह सबसे बड़ी विशेषता थी कि शिष्य को स्वावलंबी बनने की प्रेरणा दी जाती थी और उस प्रेरणा के अनुरूम ही उन्हें अपना कर्म करना पड़ता था।

प्राचीन भारत में शिक्षा की गरिमा का व्यापक बोध प्रतीत होता है। रत्न सदोह में ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र बताया गया है। महाभारत में विद्या का स्थान किसी भी चीज से बहुत ऊँचा बताया गया है। विद्या की तुलना प्राचीन भारतीय साहित्य में माता, पिता और स्त्री से की गई है। इन्हीं के समान यह कल्याणकारिणी है। यही नही, इसकी महत्ता यहाँ तक बताई गई है कि इसी के द्वारा मनुष्य में मानवता का जागरण होता है। विद्या की महत्ता बताते हुए यहाँ तक कहा गया है कि इसी से इहलोक और परलोक दोनों ही सुधरता है। विद्या को मनुष्य में बल का स्रोत माना गया है।

तक्षशिक्षा महत्वपूर्ण विद्या केन्द्र के रूप में वर्णित है। रामायण के अनुसार भरत ने इसकी स्थापना की तथा अपने पुत्र तक्ष के नाम पर इसका नामकरण तक्षशिक्षा कर दिया। राजनीतिक दृष्टि से इस स्थान का अत्यधिक महत्त्व था। भारत की पश्चिमी सीमा पर स्थित रावलपिंडी से 20 मील की दूरी पर बसा हुआ यह स्थान कुषाण राजा कनिष्क का शासन केन्द्र था तथा सदैव विदेशियों से आक्रांत होता रहता था, परंतु इसका महत्त्व राजनीतिक दृष्टि से ज्यादा शैक्षणिक कारणों से था और इसकी हर चर्चा शैक्षणिक गतिविधियों को ही इंगित करता है। ब्राह्मी लिपि के अलावा यहाँ खरोष्ठी लिपि का भी प्रचलन हुआ। इसके अतिरिक्त यूनानी, इरानी आदि भाषाएँ, वहाँ की कला और वहाँ की विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन यहाँ के विद्वानों ने किया। इससे यह पश्चिम भारत में ही नहीं पूरे भारत में एक ख्याति प्राप्त शिक्षा केन्द्र के रूप में चर्चित हुआ। इस शिक्षा केन्द्र की ख्याति इतनी थी कि बहुत दूर–दूर से लोग यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। कौटिल्य, प्रसेनजित, जीवक आदि यहीं के विद्यार्थी थे। मगध, कोसल और काशी जैसे दूरस्थ प्रदेशों से यहाँ पढ़ने के लिए शिष्य आते थे।

नालंदा, दूसरा महत्वपूर्ण केन्द्र था, जो सत्ता के साथ–साथ शिक्षा के लिए भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण था। भगवान बुद्ध के जीवन से संबंधित यह स्थान अतिशीघ्र एक ख्याति प्राप्त बहुमुखी शिक्षा केन्द्र के रूप में विकसित हो गया। कुमारगुप्त प्रथम ने इसको सँवारने और विकसित करने का कार्य किया। पालकाल तक इसकी चहुँओर ख्याति फैलती रही, लेकिन आक्रांताओं की नजर इस पर पड़ी और इसका अवसान हो गया। बख्तियार खिलजी ने इसकी गरिमा को मिट्टी में मिला दिया। उत्खनन से यह तथ्य प्रकाश में आया है कि नालंदा विश्वविद्यालय का क्षेत्रफल एक मील लम्बा और आधा मील चौड़ा था।

प्राचीनकाल में शिक्षा का केन्द्र–बिन्दु व्यक्तिगत अध्यापक या आचार्य हुआ करते थे, जो अभिभावकों से प्राप्त दक्षिणा से संतोष करते थे। पुरोहिती से भी यदा–कदा उन्हें कुछ आमदनी हो जाती थी। राजा और सामंतों से यदा–कदा कुछ अनुदान भी प्राप्त हो जाता था। प्रायः राजधानियाँ या तीर्थ केन्द्र शिक्षा के केन्द्र थे। पाटलिपुत्र वल्लभी, उज्जैयिनी, पद्मावती, कौशाम्बी, अछिच्छत्र, वैशाली, वाराणसी, अयोध्या, मथुरा, नासिक एवं कांची विद्या के प्रमुख केन्द्र थे। कांची अपनी पट्टीकाओं के लिए विख्यात था। राजाओं से अग्रहार के रूप में प्राप्त ग्रामों की पाठशालाएँ होती थी, जिनका संचालन दानग्राही विद्वान ब्राह्मण करते थे। कुछ मंदिरों के साथ भी पाठशालाएँ संबद्ध होती थी। गुप्तकाल में बौद्ध विहार भी शिक्षा का केन्द्र बनने लगे थे।

प्राचीन भारतीय परम्परा में शिक्षा का वेदों से जो चलन आरंभ हुआ, वह गुप्तकाल तक आते–आते एक निश्चत आकार लेने लगा था। उस काल तक अनेक शैक्षणिक धारणाएँ एवं संस्थाएँ अस्तित्व में आई और शिक्षा को सोद्देश्य प्रगति पथ पर बढ़ते हुए पाते हैं। विद्या की अनेक शाखाओं का विकास देखने को मिलता है। शिक्षा को राजकीय संरक्षण और संस्था के रूप में परिणत होने की परिघटना महत्वपूर्ण तथ्य है, जिसको रेखांकित किया जाता है।

अतः उपर्युक्त आधारों का विश्लेषण किया जाये तो भारत में शिक्षा पद्धति का इतिहास प्राचीन से वर्तमान तक के सफर में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आज भी प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति की उतनी ही प्रासंगिता है, जितनी प्राचीन समय में विद्यमान थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची :–

1. अल्टेकर, डॉ. अनंत सदाशिव, एडूकेशन इन एंशियेंट इंडिया, पृ. 3.

2. पाण्डेय, डॉ. राजबलि, हिन्दू संस्कार, पृ. 17.
3. ऋग्वेद– सरस्वती सूक्त– 10.3.4
4. ज्ञानं तश्तीयं मनुजस्य नेत्र समस्ततत्वार्थविलोकदक्षम्
तेजोऽनपेक्षं विगतान्तरायं प्रवशत्तिमत्सर्वजगत्त्रयेऽपि। – सुभाषितरत्नभाण्डागार,
5. अनकेसंशयच्छेद परीक्षार्थयस्य दर्शनम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः। – सुभाषितरत्नभाण्डागार,
6. बुद्विर्यस्य बलं तस्य। पंचतन्त्र – मित्रभेद–297
7. नास्ति विद्यासमं चक्षुः नस्ति सत्यसमं तपः। महाभारत 12.319.6
8. सा विद्या या विमुक्तये
9. हर्षचरित, हिन्दी अनुवाद, बासुदेव शरण अग्रवाल, पृ0 71–72
10. तदैव – पृ0 4
11. कादम्बरी, हिन्दी अनुवाद, रमाशंकर त्रिपाठी, पृ0 4
12. हर्षचरित (अनुवाद) पृ0 72
13. तदैव, पृ0 72
14. तदैव, पृ0 33
15. तदैव पृ0 34